महाकवि भूधरदास कृत 'पार्श्वपुराण' का कथासार

-डॉ. वीरसागर जैन

[महापुरुषों का जीवन-चरित एक मणिस्तम्भ के समान होता है और सच मानिये, आज भी मनुष्य का उत्तम जीवन-निर्वाह उसी के प्रकाश से सम्भव हो रहा है, किसी दीपक, बल्ब, ट्यूब आदि के भौतिक प्रकाश से नहीं। महापुरुषों में भी तीर्थंकर और तीर्थंकरों में भी भगवान पार्श्वनाथ के जीवन-चरित्र का उत्तरोत्तर विशेष महत्त्व है। आचार्य गुणभद्र लिखते हैं-

"अनभिव्यक्तमाहात्म्या देव तीर्थकरा: परे।

त्वमेव व्यक्तमाहात्म्यो वाच्या ते साधु तत्कथा।।" - उत्तरपुराण 37/4

अर्थात् हे पार्श्वनाथ! अन्य सभी तीर्थंकरों की अपेक्षा आपका माहात्म्य जगत् में विशेष रूप से व्यक्त हुआ है, अतः आपकी कथा अच्छी तरह कहने योग्य है।

यही कारण है कि तीर्थकर पार्श्वनाथ के जीवन-चरित्र को प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश आदि अनेक भाषाओं में अनेकानेक लेखकों ने निबद्ध कर मानव का सुन्दर पथ-प्रदर्शन किया है।

यहाँ हम महाकवि भूधरदास कृत 'पार्श्वपुराण' (आगरा, वि.सं. 1789) का कथासार प्रस्तुत कर रहे हैं। आशा है कि इसे पढ़कर हम संकल्प करेंगे कि अब हमें कमठ के मठ (कषायों, क्रोधादि विभावों) में नहीं, अपितु पार्श्वनाथ के आश्रम (स्वभाव) में ही विश्राम करना है; क्योंकि `तीन भुवन में सार, वीतराग-विज्ञानता।']

कथानायक भगवान पार्श्वनाथ को प्रणाम हो! पंचपरमेष्ठी को प्रणाम हो! जिनवाणी को प्रणाम हो! आचार्य कुन्दकुन्द एवं जिनसेन आदि गुरुओं को प्रणाम हो!

अब मैं अल्पबुद्धि स्व-पर-हिताय पार्श्वनाथ भगवान का चरित्र गाता हूँ। यद्यपि जिस प्रकार अपार समुद्र को चुल्लू में नहीं भरा जा सकता, उसी प्रकार भगवान पार्श्वनाथ के गुणों की गणना कोई भी कवि नहीं कर सकता, परन्तु यह उत्तम मनुष्य भव जिनेन्द्र भगवान की चर्चा के बिना निष्फल ही है, अतः मैं पूर्वाचार्यों के अनुसार संक्षेप में सरल रूप से यह पार्श्वपुराण कह रहा हूँ।

एक बार की बात है, विपुलाचल पर्वत पर भगवान महावीर का समवशरण आया । वहाँ राजा श्रेणिक ने गौतम गणधर से भगवान पार्श्वनाथ का जीवन चरित्र पूछा । तब उन्होंने इस प्रकार बताया-

पहला अधिकार-

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में पोदनपुर नामक नगर में अरविन्द नामक राजा राज्य करता था। उसके विश्वभूति नामक एक बुद्धिमान मन्त्री था, जिसके दो पुत्र थे- कमठ और मरुभूति। बड़ा पुत्र कमठ कुटिल स्वभावी था और छोटा पुत्र मरुभूति सरल स्वभावी था एक दिन मन्त्री विश्वभूति को अपने सिर में सफेद बाल देखकर संसार से वैराग्य हो गया और उसने अपने पुत्र मरुभूति को राजा की सेवा में सौंपकर मुनिदीक्षा धारण कर ली। राजा अरविन्द ने मरुभूति को अपना मन्त्री बना लिया। एक समय राजा अरविन्द अपनी सभी सेना को लेकर राजा वज्रवीर्य पर चढ़ाई करने चले गये थे और इधर कमठ निरंकुश होकर अनीति करने लगा। एक दिन वह अपने भाई की पत्नी को देखकर कामविह्वल हो गया और यथा-तथा उसने उसका शील भंग कर दिया।

राजा अरविन्द जब शत्रु को जीतकर घर लौटा तो उसे कमठ की काली करतूतों का पता चला। उसने मरुभूति को बुलाकर पूछा कि इस व्यभिचार के लिए कमठ को क्या दण्ड दिया जाये। मरुभूति ने क्षमा प्रदान करने की सलाह दी और विनती भी की; परन्तु राजा ने इस अपराध को क्षमा करना न्यायोचित न समझा और कमठ को शिर मुंडन करके, काला मुँह करके गधे पर बैठाकर पूरे नगर में घुमाकर देश निकाला दे दिया। इससे कमठ अत्यन्त दुखी हुआ और भूताचल पर्वत पर स्थित तपस्वी समुदाय के पास चला गया। वहाँ सभी तपस्वी ज्ञान-रहित थे और केवल काय-क्लेश करते थे। कमठ भी इनसे दीक्षा लेकर कायक्लेश करने लगा। उसने अपने दोनों हाथों में एक बड़ी शिला भी उठा रखी थी। सरल-हृदय मरुभूति अपने भाई कमठ से मिलने वहाँ गया और क्षमायाचनापूर्वक बोला- भाई! मेरा अपराध क्षमा कर दो, मैंने तो राजा से बहुत विनती की थी, पर वे नहीं माने और तुम्हें दण्डित किया। यह कहकर मरुभूति ज्योंही कमठ के चरणस्पर्श करने लगा, दुष्ट कमठ ने क्रोधित होकर भारी शिला गिराकर मरुभूति की हत्या कर दी।

दूसरा अधिकार-

एक दिन बादल को क्षणभर में विलय होता देखकर राजा अरविन्द को संसार से वैराग्य हो गया और उन्होंने मुनिदीक्षा धारण कर ली। एक बार वे ससंघ सम्मेदशिखर की यात्रा को जा रहे थे कि रास्ते में एक सल्लकी नामक वन पड़ा। इसी वन में मरुभूति का जीव हाथी हुआ था और आज उसने उन्मत्त होकर पूरे जंगल में खलबली मचा रखी थी। अपने इसी विकराल रूप में यह

हाथी मुनि अरविन्द के पास आया और उसने उन्हें मारने की कोशिश की, किन्तु एक चिह्न देखकर हाथी को जातिस्मरण ज्ञान हो गया और वह उसी समय एकदम शांत हो गया। मुनिराज ने उसे धर्म का उपदेश दिया जिसे सुनकर हाथी ने 'सम्यग्दर्शन' प्राप्त किया और अष्टमूलगुण एवं श्रावक के बारह व्रत भी अंगीकार किये।

एक दिन जब यह हाथी वेगवती नदी पर पानी पीने गया तो इसे कुरकट अहि ने डस लिया, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी। यह कुरकट अहि पिछले जन्म का बैरी कमठ का ही जीव था। हाथी मरकर बारहवें स्वर्ग में देव हुआ और फिर वहाँ से चलकर पुष्कलावती देश के राजा का पुत्र अग्निवेग हुआ। एक दिन संयोगवश एक मुनिराज से अग्निवेग की भेंट हुयी। मुनिराज ने अग्निवेग को धर्मोपदेश दिया और अग्निवेग ने संसार से विरक्त होकर मुनिदीक्षा धारण कर ली। एक दिन ये अग्निवेग मुनिराज एक गुफा में आत्मध्यान कर रहे थे कि एक अजगर ने उन्हें डस लिया और उनके प्राण निकल गये। यह अजगर कमठ का ही जीव था; जो क्रमशः कमठ, कुरकुट अहि, पाचवें नरक का नारकी और अब अजगर सर्प हुआ था। अग्निवेग मुनिराज मरकर अच्युत नामक 16 वें स्वर्ग में देव हुये।

तीसरा अधिकार-

जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र में अश्वपुर नामक एक नगर था। यहाँ वज्रवीर्य नामक राजा राज्य करता था। उसके विजया नाम की सुन्दर रानी थी। एक समय रात्रि के पिछले प्रहर में रानी विजया ने पाँच शुभ स्वप्न देखे मेरु, दिवाकर, चन्द्र विमान और विशाल सजल सरोवर प्रातःकाल जब रानी विजया ने अपने पति से स्वप्न-फल पूछा तो राजा ने बताया कि उसके महान पुत्र होगा। तदनुसार वह मरुभूति का जीव अच्युत नामक सोलहवें स्वर्ग से चलकर इन राजा-रानी का व्रजनाभि नामक पुत्र हुआ। प्रबल पुण्योदय से इसे चक्रवर्ती पद भी प्राप्त हुआ। एक दिन यह चक्रवर्ती क्षेमंकर मुनिराज का धर्मोपदेश सुनकर संसार से विरक्त हो गया और उसने समस्त वैभव को त्यागकर निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनिदीक्षा धारण कर ली।

उधर वह कमठ का जीव अजगर की पर्याय छोड़कर छठे नरक का नारकी हुआ और बाईस सागर तक अनिर्वचनीय भयंकर दुखों को सहने के बाद वहाँ से निकलकर एक बदसूरत भील हुआ। यह भील एक दिन घूमता हुआ इधर ही आ निकला जहाँ वज्रनाभि मुनिराज आत्मध्यान कर रहे थे । निर्दयी भील ने मुनिराज पर तीक्ष्ण बाण छोड़ दिया। मुनिराज धर्मध्यानपूर्वक देह त्यागकर मध्यम ग्रैवेयक में अहमिन्द्र हुये और वह भील रौद्रध्यानपूर्वक मरण कर सातवें नरक में नारकी हुआ।

चौथा अधिकार-

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड में अयोध्या नाम की नगरी है। वहाँ के राजा का नाम वज्रबाहु था। उसके प्रभाकरी नाम की रानी थी। वह अहमिन्द्र (मरुभूति का जीव) इन राजा-रानी के यहाँ आनन्द कुमार नामक पुत्र हुआ। पुण्ययोग से आनन्द कुमार को अपने सिर में सफेद बाल देखकर संसार से वैराग्य हो गया। उसने अपने बड़े पुत्र को राज्य देकर सागरदत्त मुनिराज के पास मुनिदीक्षा धारण कर ली। मुनिराज आनन्द ने द्वादश प्रकार का घोर तप किया, दश धर्मों की आराधना की और सोलहकारण भावनाएँ भाकर तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध भी कर लिया।

एक दिन ये महामुनि वन में मेरु पर्वत की भाँति निष्कम्प रूप से खड़े होकर आत्मध्यान में लीन थे कि कमठ के जीव ने जो सातवें नरक से निकलकर इसी वन में सिंह हुआ था, उन पर आक्रमण कर दिया। मुनिराज ने क्षमापूर्वक प्राण तजे और आनत नामक तेरहवें स्वर्ग में इन्द्रपद प्राप्त किया और सुखपूर्वक काल व्यतीत करने लगे।

पाँचवाँ अधिकार-

जम्बूद्वीप के भरत खण्ड के काशी देश में बनारस नामक की एक अनुपम नगरी है। यहाँ के राजा इक्ष्वाकुवंशी विश्वसेन थे। उनकी रानी का नाम वामादेवी था। एक समय सौधर्म इन्द्र ने कुबेर को आज्ञा दी कि आनत स्वर्ग के इन्द्र की आयु अब मात्र छह महीने शेष रह गई है और अब वह बनारस में विश्वसेन के घर शुभ पंचाश्चर्य करो। कुबेर ने इन्द्र की आज्ञानुसार शीघ्र ही विपुल अनमोल रत्नों की वर्षा कर राजा के आँगन को भर डाला। प्रतिदिन साढ़े तीन करोड़ रत्नों की वर्षा होने लगी। छह महीने बाद एक दिन के पिछले प्रहर में रानी वामादेवी ने सोलह स्वप्न देखे और अन्त में यह भी देखा कि उसके मुख में एक गजराज ने प्रवेश किया। प्रातःकाल हाने पर रानी ने पति को सभी स्वप्न बताये। उन्होंने अपने स्वप्नज्ञान के द्वारा बताया कि उसे अवश्यमेव जगत का स्वामी पुत्र प्राप्त होगा। साथ में यह भी बता दिया कि स्वप्न दर्शन के अंत में दिखाई देने वाला गजप्रवेश इस बात का सूचक है कि पार्श्वनाथ उसके गर्भ में आ गये हैं। रानी वामादेवी के हर्ष का पार ना रहा। सौधर्म इन्द्र ने भी जब यह जाना कि भगवान पार्श्वनाथ गर्भ में पहुँच चुके हैं तो कुलाचलों पर स्थित सरोवरों के कमलों पर रहने वाली श्री आदिक गुणवती देवियों को बुलाया और उन्हें उक्त हर्षजनक समाचार सुनाकर माता वामादेवी की सेवा करने की आज्ञा दी। देवियाँ समाचार सुनकर बहुत प्रसन्न हुई और शीघ्र ही जगन्माता वामा के महलों में पहुँच गईं। इन्द्रों ने भी अपने अवधिज्ञान के द्वारा ज्योंहि समाचार जाना, अपने अपने विमानों में बैठकर गर्भकल्याणक मनाते हुए वे सब यहाँ आये। बड़े ही उत्साह से गर्भोत्सव मनाकर समस्त देव अपने अपने स्थान पर लौट गये। देवियाँ माता की सेवा में लगी रहीं।

छठा अधिकार-

गर्भकाल पूर्ण होने पर पौष कृष्णा एकादशी के दिन वामादेवी ने पाश्र्व कुमार को जन्म दिया। तीनों लोकों में अपार आनंद की लहर छा गयी। इन्द्रासन कम्पित हुए और इन्द्र देवों ने अवधिज्ञान से पार्श्वनाथ के जन्म को जान लिया। सौधर्म इन्द्र ने शीघ्र ही जन्मकल्याणक की तैयारियां प्रारम्भ की | ऐरावत हाथी तैयार किया गया, जिस पर सौधर्म इन्द्र अपनी इन्द्राणी सहित बैठकर भारी देव सेना के साथ बनारस आया। बनारस नगर की परिक्रमा की गई। तत्पश्चात् नगर में रास्ते में देवों की भारी भीड़ जमा हो गई। इतने में सौधर्म इन्द्र की इन्द्राणी प्रसूतिगृह में गई। वहाँ उसने पुत्र सहित माता को प्रदक्षिणा देकर प्रणाम किया और स्तुति की। फिर माता को तो माया नींद से सुला दिया और वहाँ एक मायामयी पुत्र रखकर पार्श्व कुमार को ले आई। इन्द्र ने इस शिवकन्या के वर को बारम्बार देखा, परंतु तृप्त नहीं हुआ तो उसने अपनी एक हजार आँखें बनाकर देखा।

इसके बाद पार्श्वनाथ को सुमेरुपर्वत पर स्थित पांडुकशिला पर ले जाया गया। वहाँ पद्मासन में बैठाकर क्षीरसागर के जल से उनका अभिषेक किया गया। आकाश जय-जयकार से गूंज उठा। सभी देवों ने अतुल उत्साह से इस कार्यक्रम में भाग लिया और बार-बार प्रणाम करते हुए प्रदक्षिणाँ दीं। जन्माभिषेक पूर्ण होने पर इन्द्राणी ने पार्श्व कुमार के शरीर को वस्त्र से पोंछकर तथा दिव्य सुगंधित कुंकुमादिक का विलेपन कर आभूषण पहनाये। तदनन्तर इन्द्रादि ने पार्श्वनाथ की स्तुति की।

अभिषेक के बाद सारी देवसेना पार्श्वनाथ को लेकर बनारस लौट आई। इन्द्राणी ने माता को माया-नींद से जगाकर इस त्रिलोकीनाथ बालक को सौंप दिया। माता बहुत प्रसन्न हुई। इन्द्र-इन्द्राणी ने भगवान के माता-पिता की खूब स्तुति की और वस्त्राभूषण भेंट किये। अब राजा ने भी अपार उत्साह से पूरे नगर में पुत्र का जन्मोत्सव मनाया, जिसमें स्वयं इन्द्र ने भी अद्भुत नृत्य प्रस्तुत किया। इसके बाद इन्द्रादिक सभी देव अपने-अपने स्थान को लौट गये।

सातवाँ अधिकार-

विविध प्रकार की मनोहारी बाल क्रीड़ाओं से पार्श्वकुमार सबको रिझाते हुए शनैः शनैः कुमारावस्था को प्राप्त हुए। क्षायिक सम्यग्दर्शन और तीन ज्ञान के धनी तो वे पहले से ही थे। आठ वर्ष के होने पर उन्होंने अणुव्रत भी अंगीकार कर लिये। सोलह वर्ष के होने पर उनसे पिता ने कहा कि हे कुँवर! अब तुम एक राजकन्या से विवाह कर सहज लोक व्यवहार का निर्वाह करो, ताकि अपनी वंशबेल आगे बढ़े। जिस प्रकार नाभिराय की अभिलाषा प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ ने पूरी

की थी, उसी प्रकार हमारी भावना तुम पूरी करो। पार्श्वकुमार ने उत्तर दिया- हे पिताजी! आप अपने हृदय में विचार करके देखिये, मैं ऋषभदेव के समान नहीं हूँ, मेरी आयु उनकी अपेक्षा बहुत ही कम है, जिसमें भी सोलह तो व्यतीत हो गये हैं, अतः अल्प सुख के लिए इतना उपद्रव संग्रह करना ठीक नहीं है। पुत्र का यह विवाह-निषेधसूचक उत्तर सुनकर पिता अत्यन्त दुःखी हुये, उनकी आँखों में आँसू आये।

अब जरा उधर चलिये, उस कमठ के जीव का क्या हुआ। वह मुनिहत्या के अपराध से पाँचवें नरक में गया और 17 सागर तक जो भयंकर दुख भोगे, उन्हें सर्वज्ञ भगवान ही जानते हैं। नरक से निकलकर तीन सागर पर्यन्त वह अन्यत्र दुर्गतियों में भ्रमण करता रहा, त्रस स्थावर आदि पर्याय भी धारण की। किन्तु किसी जन्म में कोई शुभ क्रिया की जिसके फलस्वरूप अब वह पार्श्वनाथ की माता का पिता बना था। अपनी पटरानी के देहावसान के कारण शोकविह्वल होकर उसने तपस्वी वेश धारण कर लिया। सिर पर जटा और शरीर पर भस्म लगाकर मृगछाला धारण करके यह तपस्वी एक दिन पंचाग्नि तप कर रहा था। इसी अवसर पर श्री पार्श्वकुमार हाथी पर चढ़कर अपने मित्रों सहित सहज क्रीड़ावश वन में विहार करने आये। उन्होंने अपने नाना को पंचाग्नि तप करते हुए देखा। नाना ने अपने पास पार्श्वकुमार को देखकर क्रोधित होकर सोचा- अरे, कुँवर को इतना अभिमान कि मुझे विनय-प्रणाम तक नहीं करता है, जबकि मैं तपस्वी हूँ, कुलवन्त हूँ, इसकी माँ का पिता हूँ, सब तरह से पूज्य हूँ।

और वह अग्नि का ईंधन तैयार करने के लिए लकड़ी चीरने (फाड़ने) के लिए तैयार हुआ। ज्योंही उसने अपने हाथ में कुल्हाड़ी ली, श्री पार्श्वकुमार ने इस प्रकार हित-मित प्रिय वचन कहे- हे तपस्वी! इस काठ को मत फाड़ो, इसमें एक नाग का जोड़ा है।

इतने में तो वह तपस्वी गुस्से में आकर बोला- ए बालक! बड़े ज्ञाता तुम ही हो, ब्रह्मा-विष्णु-महेश सभी तुम हो, समस्त चराचर को तुम्हीं जानते हो? और उसने उस काठ को चीर ही दिया। दोनों नाग-नागिन खण्डित हो गये। करुणासागर पार्श्वनाथ बोले- अरे तपस्वी! तू व्यर्थ ही अभिमान में चूर हो रहा है, तेरे हृदय में करुणा नाम की कोई चीज नहीं है। तू ज्ञान के बिना केवल कायक्लेश करता है।

तपस्वी ने पुनः कुपित होकर पूछा- रे कुमार! एक तो तू स्वयं अभिमानवश विनय नहीं करता है और उल्टा मुझे ही दोष देता है, मैं तनदाहक पंचाग्नि तप करता हूँ, भुजाएँ ऊपर करके

एक पैर के बल पर खड़ा रह लेता हूँ, भूख-प्यास आदि सभी बाधाओं को सहन करता हूँ, सूखे पत्तों से पारणा करता हूँ, फिर तू क्यों मेरी निन्दा करता है, इसे ज्ञानहीन तप कैसे कहता है?

पार्श्वनाथ ने समझाया- तुम्हारे तप में घोर हिंसा होती है, अतः यह दयाहीन तप है, ज्ञानहीन तप है, थोड़ा भी उत्तम फल नहीं दे सकता है। जिस प्रकार कण-रहित तुष असार होते हैं, उसी प्रकार ज्ञान-रहित तप असार होता है। जिस प्रकार नेत्रहीन पुरुष दावाग्नि में जल ही जाता है, मार्ग प्राप्त नहीं कर सकता, उसी प्रकार ज्ञानहीन तप संसार-ताप से नहीं बचा सकता। साथ ही हे तपस्वी ! क्रिया-रहित ज्ञान भी फलदायक नहीं होता। अतः हठ छोड़कर जिनमत के अनुसार योग्य तप करो। फिर भी तुम अपना चित्त मलिन मत करो, जो ठीक लगे सो ही करो। पार्श्वकुमार ने नाग-नागिन को णमोकार मन्त्र सुनाया, जिससे वे देह त्यागकर स्वर्ग में धरणेन्द्र- पद्मावती हो गये।

अब श्री पार्श्वकुमार अपने घर आ गये। उधर वह तपस्वी मरकर ज्योतिषी देव संवर हुआ।

जब श्री पार्श्वकुमार तीस वर्ष के हुये तो एक दिन की बात है कि वे राजसभा में बैठे थे। अयोध्या के राजा जयसेन ने इनके पास एक दूत भेजा। राजा जयसेन पावकुमार से बहुत अधिक स्नेह रखते थे। दूत ने विनय-प्रणाम करके राजा जयसेन द्वारा भेजी हुई भेंट पावकुमार को दे दी। पार्श्वकुमार ने अयोध्या के वैभव का हालचाल पूछा दूत ने अयोध्यानगरी में हुए तीर्थंकरों का वर्णन किया जिसे सुनकर पार्श्वकुमार के मन में विषयभोगों से पूर्ण विरक्ति का भाव जागृत हो गया। उन्होंने वैराग्यजननी बारह भावनाओं का चिंतन किया। लोकतांत्रिक देवों ने उनके उक्त चिंतन की भरपूर सराहना करते हुए महाव्रत अंगीकार करने की विनती की। चारों प्रकार के इन्द्रादिक देव सपरिवार दीक्षा कल्याणक मनाने चले आये। पार्श्वनाथ को पुनः वस्त्राभूषण और गंधविलेप आदि से सजाया गया और पालकी में बिठाकर दीक्षा हेतु वन में ले जाया गया। वहाँ वट वृक्ष के नीचे स्वच्छ पाषाण के ऊपर उन्होंने दिगम्बर मुनिदीक्षा अंगीकार कर ली। उनके साथ में 300 अन्य छत्रपति राजाओं ने भी राज त्यागकर संयम धारण किया। मुनिराज पार्श्वनाथ को तुरन्त मनःपर्यय ज्ञान भी हो गया।

आठवाँ अधिकार-

आहार हेतु निकलने पर गूलरखेटपुर नामक नगर में राजा ब्रह्मदत्त ने पार्श्वनाथ को पड़गाहा और विधिपूर्वक आहारदान दिया। राजा के घर पंचाश्चर्य हुए। पार्श्वनाथ मुनि आहार लेकर पुनः वन में आ गये और आत्मध्यान में लीन हो गये। एक दिन की बात है, वे दीक्षावन में कायोत्सर्ग

मुद्रा में ध्यान में खड़े थे। तभी उनका पूर्व भवों का बैरी कमठ का जीव जो अब, संवर नामक ज्योतिषी देव हुआ था, आकाशमार्ग से कहीं जा रहा था। अचानक प्रभु के ऊपर आते ही उसका विमान रुक गया। उसने अवधिज्ञान से सब जान लिया और पार्श्वनाथ पर घोर उपसर्ग किया। किन्तु पार्श्वनाथ आत्मध्यान से विचलित नहीं हुये और उन्होंने केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया। इन्द्रादि देव केवलज्ञानकल्याणक मनाने लगे। इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने ऐसे अद्भुत समवशरण की रचना की जिसे देखकर इन्द्र भी आश्चर्यचकित हो गया। उसने प्रसन्न होकर अष्टद्रव्य से भगवान की पूजा की। इस प्रकार इन्द्रादिक समस्त देवता बहुविध स्तुति करके समवशरण में अपने-अपने स्थान पर बैठ गये।

नौवाँ अधिकार-

जिस प्रकार चातक प्रतीक्षा भरी नजरों से बादलों की ओर देखता है, उसी प्रकार समवशरण में स्थित सारे प्राणी उत्सुकतापूर्वक भगवान की दिव्यध्वनि की प्रतीक्षा करने लगे। चार ज्ञान के धनी स्वयंभू नामक गणधरदेव ने हाथ जोड़कर भगवान से प्रार्थना की हे प्रभो! तीनों लोकों में मिथ्यात्वरूपी घनान्धकार छाया हुआ है, जिससे जीवों के हिताहित का कोई विवेक नहीं है; इस अंधकार को दूर करने के लिए आपकी वाणी ही एक मात्र सच्चा दीपक है; अतः हे सर्वज्ञ प्रभो! कृपाकर आप अपने तत्त्वोपदेश द्वारा जीवों का भला कीजिए। तब भगवान के श्रीमुख से महामेघ की गर्जना समान गंभीर और निरक्षरी दिव्यध्वनि खिरी | बिना किसी प्रकार के तालु, होठ आदि का स्पर्श किये तथा बिना किसी तरह के मुखविकार के यह जिनध्वनि समस्त भाषाओं में परिलक्षित होती हुई खिरी। जिस प्रकार मेघ एकरूप होने पर भी नीम आम आदि में पहुँचकर विभिन्न रूप धारण करता है, उसी प्रकार भगवान की एकरूपा निरक्षरी ध्वनि श्रोता के अनुरूप सर्वभाषाओं में परिणमित हो जाती थी। इस दिव्यध्वनि में छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, सात तत्त्व, नौ पदार्थ, मोक्ष और मोक्षमार्ग आदि का विस्तार से प्रतिपादन हुआ। बहुत भव्य जीवों को संसार-शरीर-भोगों से वैराग्य हो गया और उन्होंने दिगम्बर मुनिदीक्षा धारण कर ली, कितने ही जीवों ने श्रावक के व्रत अंगीकार किये, कितनी ही नारियाँ आर्यिका बन गई, कितने ही पशुओं तक ने भी अणुव्रत धारण किये तथा अन्य कितने ही देवी-देवियों, मनुष्यों और पशुओं ने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया। कमठ के जीव संवर नामक ज्योतिषी देव ने भी जिनेन्द्र के वचनामृतों का पान कर मिथ्यात्वविष का वमन कर दिया और मोक्षमहल का प्रथम चरण सम्यग्दर्शन प्राप्त किया। चार ज्ञान के धनी स्वयंभू नामक गणधर देव ने इस दिव्यध्वनि से द्वादश अंगों की रचना की।

अन्त में इन्द्र ने भगवान से हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि हे प्रभो! इस जगत में अन्यत्र भी भव्यजीवरूपी खेती मिथ्यात्वरूपी आतप से सूखी जा रही है, अतः कृपा कर विहार कीजिए। तब भगवान का इच्छा-रहित नभ-विहार हुआ। इस प्रकार सत्तर वर्ष से कुछ कम काल तक भगवान का स्थान स्थान पर धर्मोपदेश हुआ। अन्त में वे विहार करते हुए सम्मेदशिखर पहुँचे। वहाँ उन्होंने योग-निरोध किया और आठ कर्मों का नाश कर निर्वाण प्राप्त किया। इन्द्रादिक देवों ने आकर मोक्षकल्याणक मनाया।